पाल मूर्तिकला

हर्ष के पश्चात् गंगा घाटी का वृहत्तर भाग पाल तथा सेन शासकों द्वारा शासित रहा। पाल राजवंश की स्थापना लगभग आठवीं शती के मध्य में हुई। इस राजवंश की स्थापना से बंगाल के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। इस राजवंश का शासन चार सौ वर्षों से अधिक समय तक रहा। सौ वर्ष से अधिक समय तक बंगाल में अव्यवस्था और अराजकता का प्राबल्य रहा। जनता को दीर्घकालिक समय तक अथवा विपत्तियों का सामना करना पड़ा जिसके फलस्वरूप उनमें राजनीतिक जागरुकता और आत्मत्याग की भावना उद्भूत हुई और उन्होनें अनुभव किया कि एक सुव्यवस्थित और दृढ़ केन्द्रीय शासन के अभाव में राजनीतिक विखण्डन तथा विदेशी आक्रमणकारियों से रक्षा करना कठिन है। अतः राष्ट्रीय हित के लिये व्यक्तिगत हितों को त्यागकर और बिना किसी संषर्ष के बंगाल की जनता ने गोपाल नामक एक जनप्रिय वीर पुरुष के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। धर्मपाल का खलीमपुर अभिलेख स्पष्ट करता है कि मात्स्य न्याय से पीड़ित जनता ने गोपाल नामक एक वीरपुत्र को राजा मनोनीत किया—

"मात्स्यन्याय मपोहितुं प्रकृतिर्भिर्लक्ष्म्याःकरं ग्राहितः।[1]
श्री गोपाल इति क्षितीश शिरयां चूड़ामणिस्तत्सुतः।।

पाल शासक गोपाल के पश्चात् उसके यशस्वी पुत्र धर्मपाल ने पाल राज्य को वैभव और शक्ति के शिखर पर पहुँचा दिया। इसके बाद देवपाल सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने भी अपने राज्य की सीमाओं में वृद्धि की। इन पाल राजाओं ने सम्पूर्ण उत्तरी-पूर्वी भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। यद्यपि बीच-बीच में उन्हें गुर्जर प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। तथापि संघर्ष की स्थितियों में भी पाल शासकों ने अपना आधिपत्य बिहार और बंगाल में अक्षुण्ण रखा। पाल शासकों का काल मात्र एक नवीन राजनीतिक शक्ति के उदय और प्रसार के लिए महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् इस राजवंश की छत्रच्छाया में भारतीय संस्कृति और कला का अभूतपूर्व विकास हुआ। विक्रम शिला, ओदन्तपुरी और नालन्दा विश्वविद्यालय तत्युगीन शिक्षा और संस्कृति के उन्नायक केन्द्र थे।

मूर्तिकला के क्षेत्र में पालयुग की कला शैली का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। बिहार और बंगाल की प्रतिभा ने कला की इस नवीन शैली को जन्म दिया हैं जिसे पूर्वी भारत की मगध वंश शैली नाम दिया गया है। पालवंशीय शासकों के काल में इस शैली के अस्तित्व में आने के कारण इसे पाल शैली नाम भी दिया गया है। तारानाथ ने इसे पूर्वी भारतीय शैली कहा है और इसका श्रेय धीमान और उसके पुत्र विन्तपाल को दिया है। इस शैली से उत्तर प्रदेश का पूर्वोत्तर क्षेत्र भी प्रभावित रहा है, किन्तु सारनाथ केन्द्र पर इसका प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता है। इस शैली की प्रमुख विशेषता यह थी कि मूर्तियों के निर्माण के लिये चिकने काले रंग के कसौटी वाले पत्थरों तथा धातुओं का प्रयोग किया गया है।

इस कला शैली की मौलिकता में 800 ई0 से 1200 ई0 के मध्य काल तक कोई मूलगत परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता है। वस्तुतः इसका यही प्रमुख कारण रहा है कि इस समय तक बौद्ध, ब्राह्मण, एवं जैन देवी-देवताओं का स्वरूप बिखरा हुआ न होकर अपना एक निश्चित रूप ग्रहण कर लिया था और शास्त्रीय नियमों में आबद्ध देवी-देवताओं के स्वरूप में कलाकार द्वारा परिवर्तन की कोई भी गुंजाइश नहीं थी। इस शैली में बनी बौद्ध देवी-देवताओं की मूर्तियाँ साधनमाला में दिये गये लक्षण नियम के आधार पर निर्मित प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण देवी-देवताओं की

Scanned with CamScanner

मूर्तियों को निर्मित करने में भी पौराणिक और शिल्पशास्त्रीय नियमों का पालन हुआ है। शारीरिक संरचना की दृष्टि से स्त्री और पुरुषों की आकृतियों में गोल और सौम्य मुखाकृति, सामान्य चौड़ें कन्धें और मांस पेशियों का उतार-चढ़ाव स्पष्ट दिखायी देता है। वक्षस्थल स्वाभाविक है। उसमें मथुरा शैली के उभारपन का अभाव है। इस रूप में निर्मित मूर्तियाँ हस्तकला की अच्छी कारीगरी प्रस्तुत करती हैं जो इस कला में श्रेष्ठ समझी जाती हैं। इस शैली में निर्मित मूर्तियाँ अधिकतर स्थानक और आसन मुद्रा में ही हैं जिन्हें इकहरे अथवा दुहरे कमलासन पर स्थित दिखाया गया है। दुहरे कमलासन में नीचे स्थित कमलपुष्प की पंखुड़ियाँ नीचे की तरफ और ऊपरी कमल पुष्प को ऊपर की तरफ विकसित पंखुड़ियों से युक्त प्रदर्शित किया गया है।

गुप्तकालीन मूर्तिकला की प्रमुख विशेषता कमनीय और लचीली सुघड़—काया, सूक्ष्म-वस्त्र (पारदर्शी) नपे तुले आभरण तथा भाव व्यंजकता थी। जबकि पालयुगीन कलाकारों ने अपने शिल्प में अधिकतम रूप गरिमा समेंटने का प्रयास किया है तथापि उसमें वह सहज सौन्दर्य दृष्टिगोचर नहीं होता जो पूर्ववर्ती शिल्प का वैशिष्ट्य था। स्वर्णिम काल की मूर्तिकला में देव मूर्तियों के निर्माण सम्बन्धी शास्त्रीय लक्षण अपनी निर्माणावस्था में थे तथा शिल्पी को मूर्ति निर्माण में अपनी सौन्दर्य कल्पना को आकार प्रदान करने का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त था। फलतः मूर्तियाँ अतिशय रमणीय और भाव व्यंजक बन पड़ी हैं। किन्तु आठवीं शती तक आते-आते देव मूर्तियों के निर्माण लक्षण और लांछन पूर्णतः निश्चित हो गये थे और साथ ही कलाकार की सौन्दर्यानूभूति के परिणाम भी रूढ़ हो चुके थे। गुप्तकालीन मूर्तियाँ देवता के ध्यान का साधन ही नहीं थी, वे अपने आप में शिल्पी की सौन्दर्य साधना का लक्ष्य भी थीं। किन्तु पाल युग में देव मूर्तियाँ देव विशेष में ध्यान के केन्द्रीयकरण का माध्यम बनकर रह गयीं और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु शिल्पकार ने पूर्व निश्चित लक्षणों एवं रूढ़ियों का दृढ़ता से पालन करना आवश्यक समझा, इसके परिणामस्वरूप शिल्पी का सौन्दर्य बोध स्वतन्त्र और सहज रूप से नहीं उभर सका। यद्यपि सुन्दर मूर्तियों में देवता निवास करते हैं, यह परम्परागत धारणा शिल्पी को लक्षणों से जकड़ी देवी काया में धार्मिक भावना के अनुकूल वातावरण की सृष्टि के साथ ही साथ पार्थिव सौन्दर्य भरने की दिशा में प्रेरित करता रहा, फलतः शिल्पी द्वारा कला निरुपण में लावण्य एवं कमनीयता के उद्रेक का भरसक प्रयत्न किया गया तथापि इसमें वह भाव व्यंजना न आ सकी जो कलाकार की सौन्दर्य दृष्टि की उन्मुक्त उड़ान से सम्भव हो सकती थी।

गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प में मौलिकता का जो रूप स्पष्ट होता है उसका अभाव इस युग की मूर्तियों में दृष्टिगत होता है। सौन्दर्य सर्जना हेतु शिल्पी ने अपनी प्रतिभा को कुछ अन्य दिशाओं में अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। उसके द्वारा नियमों के पालन के साथ-साथ व्यौरों पर अधिक बल देने का परिणाम यह हुआ कि मूर्तियों में आभूषणों की भरमार सी हो गई। विरागी बुद्ध को भी आभूषणों से अलंकृत प्रदर्शित किया गया है। बोधिसत्व के रूप में तो उन्हें पहले से ही आभूषणों से युक्त प्रदर्शित किया जाता रहा। किन्तु ब्राह्मण देव मूर्तियों को आभूषणों से सुसज्जित करने की प्रथा के प्रभावस्वरूप इस समय बुद्ध मूर्तियों को भी आभूषणों से मण्डित किया जाने लगा। संभवतः इसका यह भी कारण रहा होगा कि प्रतिमाशास्त्रीय नियमों में बंधें रहने के कारण कलाकार मूर्ति में सौन्दर्य भरने के लिए अवश था। अतः सौन्दर्याकंन हेतु आभूषणों का प्रयोग एक आवश्यकता के रूप में अंगीकृत हुआ हो। इस शैली की मूर्तियों में किरीट मुकुट, हार, कंगन, बाजूबन्द, आदि आभूषणों का प्रदर्शन हुआ है। किन्तु आभूषण प्रदर्शन की शिल्पी

Scanned with CamScanner

की अनियन्त्रित भावना के फलस्वरूप मूर्तियों का भाव-पक्ष कुण्ठित होता सा प्रतीत होता है। फिर भी शिल्पियों द्वारा निश्चयात्मक मूर्तियों में अंग-प्रत्यंगों के झुकाव के माध्यम से गतिशीलता और सजीवता लाने का प्रयास किया गया, जो काफी अंशों में सफल रहा। इस प्रकार लक्षणों में आबद्ध, अलंकरण की अतिशयता और अंग-प्रत्यंगों का चपल आभंग इस शैली की मूर्तियों की विशिष्टताएं हैं।

इस शैली की आरम्भिक देव मूर्तियों में मानवीय सौन्दर्य को आकर्षक रूप में उद्भासित किया गया है। देवियों की मूर्तियों में उन्नत वक्ष, क्षीणकटि, विस्तृत नितम्ब और दीर्घ जंघा के माध्यम से भारतीय रमणी-सौन्दर्य की कमनीय छवि का प्रस्तुतीकरण है। पुरुष मूर्तियों की काया में नारी सुलभ कमनीयता का भाव परिलक्षित होता है जो तन्त्रवाद के प्रभाव को स्पष्ट करता है। शाक्त मत के प्रचार से शक्तियों का रूप पुरुष देव मूर्तियों में भी ले लिया गया। बोधिसत्व और अन्य देवताओं की मूर्तियों में नारी सौन्दर्य और शक्ति का समावेश हुआ है, इनका गोलाकार चेहरा, कोमल चिकनाई लिये अंग सरस प्रवाह के साथ-साथ चौड़ा वक्षस्थल और खड़ी मुद्रा पुरुष और नारी के मिश्रित गुणों का सामंजस्य है।

परवर्ती बौद्ध सम्प्रदाय में ध्यानी बुद्ध अमिताभ रत्नसंभव अयोद्यसिद्धि बैरोचन और वज्रसत्व से उदभूत अनेक देवी-देवताओं की कल्पना कर ली गई। इन विविध देवताओं के स्वरूप निर्धारण में समन्वयात्मक प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। अनेक बौद्ध देवों का स्वरूप ब्राह्मण देवी-देवताओं से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है साथ ही परवर्ती युग में जो धार्मिक कट्टरता एवं द्वेष की भावना व्याप्त थी वह इस काल की बौद्ध मूर्तियों में उजागर हुई है। अनेक बौद्ध देवी-देवताओं द्वारा ब्राह्मण देवताओं को अपमानित करते हुए मूर्तियों में दिखाया जाने लगा। अपराजिता, पर्णशबरी और विघ्नान्तक आदि बौद्ध देव शक्तियों द्वारा हिन्दू मंगलकारी देव गणेश को दमित करते हुए, त्रैलोक विजय द्वारा शिव और पार्वती को पद्दलित करते हुए और बज्रहुंकार के द्वारा भैरव का मर्दन करते हुए मूर्तियों मे प्रदर्शित किया गया। यही नहीं, बोधिसत्व के जिस उदात्त रूप की कल्पना महायान में की गई थी, वह रूप भी इस द्वेषपूर्ण मनोवृत्ति का शिकार हुआ। अवलोकितेश्वर के हरिहरवाहनोद्भव रूप में उन्हें गरुड़ पर आरुढ़ विष्णु के ऊपर कल्पित किया गया है।

पालकालीन मूर्तिकला में बौद्ध जैन तथा ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ निर्मित हुईं। बौद्ध और ब्राह्मण धर्म के व्यापक प्रसार के कारण इन दोनों धर्मों से सम्बन्धित मूर्तियाँ ही बिहार और बंगाल के विविध क्षेत्रों से व्यापक पैमाने पर प्राप्त हुई हैं। जैन तीर्थंकरों की धातु मूर्तियाँ चौसा (बिहार) से मिली हैं, जिनमें पूर्ववर्ती जैन प्रतिमा लक्षण का पालन किया गया है। शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से नालन्दा और कुर्किहार से मिली धातु मूर्तियों की कोटि में इन्हें नहीं रखा जा सकता। नालन्दा, बोधगया, राजगृह, कुर्किहार, भागलपुर, दिनाजपुर, पहाड़पुर, राजशाही तथा बिहार एवं बंगाल के अन्य क्षेत्रों से भी मगध वंश शैली की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो लखनऊ, कलकता पटना और राजशाही संग्रहालयों में तथा लन्दन, पेरिस, बर्लिन और अमेरिका के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। बिहार और बंगाल के विविध अंचलों से मिली कुछ मूर्तियाँ व्यक्तिगत संग्रहों में भी सुरक्षित हैं। पाल मूर्तिकला शैली में अधिकांशतः बौद्ध एवं ब्रह्मण धर्मों से सम्बन्धित देवी-देवताओं की ही मूर्तियाँ निर्मित की गई हैं जिनका विवरण अधोलिखित है—

Scanned with CamScanner

1. पालयुगीन बौद्ध-मूर्तियाँ–पालयुगीन बौद्ध-मूर्तियों के अन्तर्गत बुद्ध की स्वतन्त्र मूर्तियाँ, उनके जीवन से सम्बन्धित घटनाएं और परवर्ती बौद्ध सम्प्रदाय के विविध देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ है। बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्यों में मायादेवी का स्वप्न, तुषित स्वर्ग से नीचे उतरते बुद्ध, गृहत्याग, वानरेन्द्र का मधुदान, मार विजय, नलगिरि हस्ति का दमन श्रावस्ती का महाप्रतिहार्य, महापरिनिर्वाण आदि के दृश्य उद्भूत किये गये हैं जो कला की विकासमान धारा में भरहुत और सांची की परम्परा के निर्बाध प्रवाह को स्पष्ट करते हैं। स्वतन्त्र मूर्तियों के माध्यम से इन घटनाओं का दिखाया जाना इस कला शैली की विशिष्टता है, साथ ही प्रधान मूर्ति की प्रभावली के चतुर्दिक किनारों पर भी इन घटनाओं का प्रदर्शन हुआ है। पटना संग्रहालय में सुरक्षित इस काल की अनेक मूर्तियों में बुद्ध के जन्म सप्तपदी, तुषित स्वर्ग से आगमन, महापरिनिर्वाण, वानरेन्द्र का मधुदान आदि दृश्यों का सुन्दर निदर्शन हुआ है।[2] इन विविध घटनाओं के दृश्यों में बौद्ध धार्मिक परम्परागत मान्यता की मार्मिक छवि की उद्भावना है। इस प्रकार के अंकन में मानवीय आकृतियों की बहुत भीड़ नहीं है साथ ही आलंकारिक अभिव्यंजना से पूर्ण सम्पूर्ण शिल्प में गति तथा चपलता का स्पष्ट सामंजस्य परिलक्षित होता है। वस्तु बोध की दृष्टि से विविध मुद्राओं तथा संकेतों के माध्यम से शिल्प को गति और तारतम्यता प्रदान करने का शिल्पी का प्रयास काफी अंशों में सफल रहा। उदाहरणार्थ—बोधगया से प्राप्त और राजसंग्रहालय पटना में सुरक्षित वानरेन्द्र द्वारा बुद्ध को मधुदान करने वाली मूर्ति में कमलासनासीन बुद्ध के हाँथों में पात्र का प्रदर्शन करने के साथ ही समीप स्थित वानरेन्द्र के हाथ में भी मधुपात्र का प्रदर्शन किया गया है, जो वानरेन्द्र द्वारा किये गये मधुदान और बुद्ध द्वारा उसे सहर्ष ग्रहण करने की स्थिति को स्वतः स्पष्ट कर देता है। यद्यपि कि शान्तमय बुद्ध की आकृति में गति का भाव किचिंत कुण्ठित है।

बुद्ध की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियों में उन्हें विविध मुद्राओं में सिर पर मुकुट, गले में हार आदि आभूषणों सें अलंकृत प्रदर्शित किया गया है। कुछ मूर्तियों के बाँए कन्धे के समीप उत्तरीय का आखिरी छोर लटकता हुआ दिखाया गया है। संरचना की दृष्टि से बुद्ध की कुछ धातु मूर्तियों में सिर पर घुँघराले केश, गोलाई लिया हुआ मुख और उत्तरीय को पकड़ने का सुरुचिपूर्ण ढंग तथा शारीरिक अंग-प्रत्यंगों के उतार-चढ़ाव का उत्कृष्ट रूप प्राप्त होता है जिस पर गुप्त युगीन पूर्वी भारत की कला शैली की सहज और निर्दोष छाप स्पष्ट है।

पटना संग्रहालय में सुरक्षित[3] भूमिस्पर्श मुद्रा में बुद्ध मूर्ति के ललाट पर ऊर्णा का प्रदर्शन हुआ है। अधमुँदी आँखों और गंभीर चेहरे से बुद्ध के शान्त और धीर व्यक्तिव का आभास होता है। दाहिने कन्धें के ऊपर संघाटी का प्रदर्शन नहीं हुआ है। वस्त्र पर उभारे गये सलवटों की सीधी रेखाओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। मूर्ति में स्फूर्ति का भाव कुछ कुण्ठित सा है। इसी प्रकार भूर्मिस्पर्श मुद्रा में ही वोस्टन संग्रहालय की बुद्ध मूर्ति[4] में मुकुट और हार से अलंकृत बुद्ध का सौम्य मुखमण्डल आध्यात्मिक गरिमा से मण्डित है। शरीर रचना में रेखाओं का कड़ापन न होकर तरलता है। इस मूर्ति की दूसरी विशेषता यह है कि परिकर पर चतुर्दिक बुद्ध के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं के दृश्यों को भी उद्भूत किया गया है। मूर्ति के आसन के नीचे दोनों तरफ प्रदर्शित सिंह आकृति में पशु के प्राकृतिक स्वभाव की अभिव्यंजना, अंग प्रत्यंगों के संकोच और झुकाव के माध्यम से हुई है। राजगिरि के समीप से प्राप्त एक भूमिस्पर्श मुद्रा वाली मूर्ति में[5] नियमित आकार और रचना का बंधन जकड़ा होने के कारण सौन्दर्य का तरल प्रवाह कुछ अवरुद्ध होता हुआ सा प्रतीत होता है। बुद्ध के दोनों पार्श्व में परिकर पर बोधिसत्व अवलोकितेश्वर

Scanned with CamScanner

और वज्रपाणि तथा ऊपर दोनों तरफ श्वेत और हरित तारा देवियों का प्रदर्शन हुआ है। कुर्किहार से प्राप्त और लखनऊ संग्रहालय में संग्रहीत एक मूर्ति शिल्प में[6] अलंकरण की अतिशयता के कारण मूर्ति का आन्तरिक सौन्दर्य कुण्ठित सा है। संरचना की दृष्टि से बुद्ध का गंभीर मुखमण्डल एक ध्यानासीन योगी का रूप उपस्थित न कर किसी दर्प से भरे हुए सिंहासनासीन राजा की छवि को अधिक उजागर करता है। कुर्किहार से ही प्राप्त और पटना संग्रहालय में सुरक्षित बुद्ध की भूमिस्पर्श मुद्रा में स्थित धातु मूर्ति में उत्कृष्ट शिल्प के साथ ही साथ भाव संबोध की अनुपम कल्पना समाहित है।[7] दुहरे कमलासन पर स्थित बुद्ध की काया में तरलता और मुखमण्डल पर मृदु सौम्यता के भाव की प्रखर उद्भावना है। पीठिका के नीचे दोनों तरफ अंजलिबद्ध मुद्रा में घुटने टेके दो भक्तों का प्रदर्शन हुआ है। पीठिका के नीचे अप्राकृतिक मुद्रा में प्रदर्शित सिंहों की आकृति में गति तथा चपलता का स्पष्ट सामंजस्य है। मुंगेर जनपद के लक्खीसराय से प्राप्त मूर्ति में स्थानक मुद्रा में स्थित बुद्ध को अभय मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।[8] परिकर में ऊपर बुद्ध की दो छोटी आकृतियाँ ध्यान मुद्रा और भूमिस्पर्श मुद्रा में हैं तथा नीचे उनके वाम पार्श्व में ब्रह्मा और दाहिने पार्श्व में छत्र लिये इन्द्र खड़े हैं। मूर्ति की शारीरिक संरचना में अंग-प्रत्यंगों की समविभक्तता और उतार-चढ़ाव की नियमित और स्वाभाविक रूप प्राप्त नहीं होता। जंघे से लेकर चरणों तक का असन्तुलित ढलाव मूर्ति सौन्दर्य का एक बाधक तत्व है। नालन्दा, बोधगया आदि से प्राप्त अन्य मूर्तियाँ भी आलंकारिक अभिव्यजंना से पूर्ण हैं और मगध वंश शिल्प परम्परा का प्रतिनिधित्व करती है।

बोधिसत्व मूर्तियों में प्रतिमाशास्त्रीय परम्परा के निर्वाह के साथ ही साथ उत्तम शिल्प का भी दर्शन होता है। पटना संग्रहालय में सुरक्षित अवलोकितेश्वर की एक मूर्ति[9] में गले में एकावली, बाँह पर बाजूबन्द और हाथों में कंगन का प्रदर्शन हुआ है। बाँए हाथ में कमल और दाहिना हाथ अभयमुद्रा में स्थित है। पटना संग्रहालय की ही एक दूसरी मूर्ति में उन्हें ललितासन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।[10] एक दूसरी मूर्ति में शारीरिक झुकाव के माध्यम से शिल्पी ने गति उत्पन्न करने का प्रयास किया है जो अंशतः सफल रहा है किन्तु शरीर का झुकाव बगल की तरफ होने के साथ ही थोड़ा पीछे की तरफ दब सा गया है जिससे आगे वक्षस्थल का उभार थोड़ा अधिक हो गया है। कुर्किहार से मिली और पटना संग्रहालय में सुरक्षित अवलोकितेश्वर की दो धातु मूर्तियों में उत्कृष्ट शिल्प का दर्शन होता है।[11] प्रथम मूर्ति में दुहरे कमलासन पर चतुर्भुजी अवलोकितेश्वर को त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। दूसरी मूर्ति में अलंकरण की अधिकता स्पष्ट है। मुकुट, ग्रैवेयक, बाजूबन्द और कंगन आदि आभूषणों से सुसज्जित, दुहरे कमलासन पर स्थित अवलोकितेश्वर का एक पैर मुड़ा और दूसरा आसन के नीचे लटक रहा है। दोनों ही मूर्तियों के हाथों में सनाल कमल का प्रदर्शन अति कलात्मक रीति से हुआ है। स्टुअर्ट ब्रिज संग्रह की द्विभुजी अवलोकितेश्वर मूर्ति[12] का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में और बाँए हाथ में सनाल कमल है। उनके मुकुट पर ध्यानी बुद्ध अमिताभ की एक लघु आकृति है। नालन्दा से प्राप्त और श्रीनगर के प्रतापसिंह संग्रहालय में सुरक्षित मूर्ति[13] में ऊँची पीठिका पर स्थित दुहरे कमलासन पर ललितासन में बैठे देवता की आकृति की जटिल मुद्रा में गति का अवरोधन नहीं हुआ है। मुद्राओं की भिन्नता से मूर्ति अतिमोहक प्रतीत होती है। पटना संग्रहालय की कहलगाँव से मिली षड़क्षरी लोकेश्वर मूर्ति[14] में उन्हें पदमासन में षड़क्षरी महाविद्या और मणिधर के साथ प्रदर्शित किया गया है। ऊपर पाँच ध्यानी बुद्धों की सूक्ष्म प्रतिकृति अंकित की गयी है। मूर्ति का तरल सौन्दर्य अलंकरणों की बहुलता से कुछ दब सा गया है। इसी प्रकार की एक सुन्दर मूर्ति मगध से मिली

Scanned with CamScanner

है और कलकत्ता संग्रहालय में संग्रहीत है जिसमें गले में हार और कण्ठा, भुजाओं, में बाजूबन्द, कलाई में कंगन और सिर पर मुकुट आदि से अलंकृत देवता को दुहरे कमलासन पर बैठे दिखाया गया है, इनके दो हाथ अंजलिबद्ध मुद्रा में वक्ष के सम्मुख और शेष दो हाथों में से दाहिने में माला तथा बाएं में कमल है। उनके मुकुट के मध्य में ध्यानी बुद्ध अमिताभ की सूक्ष्म प्रतिकृति है। इन मूर्तियों में भी अलंकरण का अतिरेक शिल्प सौन्दर्य का एक बाधक तत्व है।

ध्यानी बुद्धों से उद्भूत अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों में परवर्ती बौद्ध धार्मिक मान्यताओं की मार्मिक छवि उभरी है। नालन्दा से मिली तारा की एक सुन्दर मूर्ति जिसमें कमर से नीचे का भाग नहीं है,[15] शिल्प की दृष्टि से विशिष्टि मूर्ति है। गले में तीन लड़ियों का हार, भुजाओं में बाजूबन्द तथा आकर्षक केश विन्यास से सुसज्जित इस मूर्ति के गोलाई लिये हुए मुख मण्डल पर नारी सौन्दर्य की कमनीय छवि का निदर्शन है। पुष्ट उरोजों को पारदर्शक कंचुकी से कसा गया है। मारीचि की एक सुन्दर मूर्ति राज्य संग्रहालय लखनऊ में है[16] जो कुर्किहार से प्राप्त हुई थी। इसमें त्रिमुखी और षड़भुजी मारीचि को सात सुअर के बच्चों द्वारा खींचे जाते हुए रथ पर खड़े प्रदर्शित किया गया है। उसका एक मुख वराह मुख है। मूर्ति में अति भंग शरीर के विभिन्न कोणों से भावों एवं उद्वेगों का कुशल अंकन हुआ है, मूर्ति का चपल आभंग ओजस्वी है और स्फूर्ति के भाव तथा उभार का मोहक रूप निबद्ध है। इसी प्रकार नालन्दा से प्राप्त और भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में संग्रहीत मारिची की मूर्ति में[17] प्रत्यालीढ़ आसन में पीठिका पर स्थित त्रिमुखी और अष्टभुजी मरीचि का एक हाथ जंघे पर और दूसरा विकसित पयोधर को स्पर्श कर रहा है। अन्य हाथों में अंकुश, पाश, तीर धनुष और वज्र है। अन्य बौद्ध देवी-देवताओं में पर्णशबरी भृकुटी, महाप्रतिसिरा, खसर्पण, वागेश्वरी, जम्भल, प्रज्ञापारमिता आदि की अनेक मूर्तियाँ भारतीय संग्रहालय कलकत्ता, ढाका संग्रहालय तथा पटना संग्रहालय में संग्रहीत हैं। इन परवर्ती बौद्ध देवी-देवताओं की किंचित मूर्तियों में तत्कालीन बौद्ध धर्म में व्याप्त ब्राह्मण धर्म के प्रति प्रतिक्रिया का स्वर उभरा हुआ है। हरिहरिहरिवहनोद्भव द्वारा विष्णु पर सवारी करते हुए[18] पर्णशबरी को गणेश का मर्दन करते हुए।[19] जम्भल द्वारा कुबेर को कुचलते हुए[20] तथा विध्नान्तक द्वारा गणेश को अपमानित करते हुए[21] अनेक मूर्तियाँ इस कला में निर्मित हुई हैं।

पूर्व मध्य युगीन अन्य परम्पराओं की भाँति यहाँ भी मूर्तिकला का केन्द्र मानव है जिसमें यौवन की शक्ति, कान्ति, एवं वीरत्व के साथ आध्यात्मिक एवं सांसारिक भावों का सामंजस्य है। यह क्षेत्र तन्त्र प्रधान था। अतः ऐन्द्रिय भावों से आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति की गई है। 10वीं श0 के उत्तरार्द्ध से 12वीं शती के उत्तरार्द्ध तक की पाल मूर्तियाँ बौद्ध तन्त्रवाद से ही अभिप्रेरित हैं। प्रारम्भिक पाल मूर्तियाँ बुद्ध, बोधिसत्व, लोकनाथ एवं लोकेश्वर से सम्बद्ध हैं किन्तु परवर्ती मूर्तियाँ तान्त्रिक शक्तियों-मञ्जुश्री, तारा, मारीचि, प्रज्ञापरमिता, महाप्रतिसरा, पर्णशबरी, स्थिर-चक्र, त्रैलोक्य विजय तथा उष्णीश विजय इत्यादि से सम्बद्ध है। पूर्निया से बोगरा तथा पवना तक समस्त वारेन्द्र क्षेत्र में इन्हीं मूर्तियों का प्राधान्य है। वास्तव में वज्रयान सम्प्रदाय के विकास के फलस्वरूप बंगाल में बौद्ध तान्त्रिक मूर्तियों का सृजन किया गया।

पालयुगीन-ब्राह्मण मूर्तियाँ–पालयुगीन ब्राह्मण मूर्तियों के अन्तर्गत, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, तथा देवियों की सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं जो ब्राह्मण धर्म की लोकप्रियता और व्यापकता को स्पष्ट करते हुए पाल युग को श्रेष्ठ बतलाती हैं। विष्णु की अलंकरण से पूर्ण अनेक मूर्तियाँ चतुर्विंशति व्यूहों और अवतारों से सम्बन्धित है। पटना संग्रहालय में सुरक्षित गोविन्द रूप

Scanned with CamScanner

मूर्ति में चतुर्भुजी विष्णु को स्थानक मुद्रा में निर्मित किया गया है।[22] मुकुट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत विष्णु के दोनों पार्श्व में लक्ष्मी और सरस्वती की आकृति प्रदर्शित है। परिकर भाग में उनके विविध अवतारों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। सम्पूर्ण शिल्प में अलंकरण की अपूर्व सज्जा है। बंगीय साहित्यपरिषद् की त्रिविक्रम मूर्ति[23] में पौराणिक परम्परा के प्रतिकूल चतुर्भुजी विष्णु की आकृति सौम्य है और वे सीधे रूप में दुहरे कमलासन पर खड़े हैं। उनके दोनों पार्श्वों में लक्ष्मी और सरस्वती की कमनीय छवि उत्कीर्ण है। शिल्प की दृष्टि से मूर्ति शारीरिक गठन का उत्तम सौन्दर्य है।

शिव के अनेक रूपों में गया से प्राप्त कल्याणसुन्दर रूप की एक मूर्ति में शिव और पार्वती के विवाह के दृश्य का मनोरम उत्कीर्णन हुआ है।[24] त्रिशूल, डमरू और कपालधारी शिव अपने एक हाथ को आगे बढ़ाकर पार्वती का पाणिग्रहण कर रहे हैं। शास्त्रीय विधान के अनुसार शिव और पार्वती के मध्य नीचे पुरोहित के रूप में चतुर्मुख ब्रह्मा हैं। नियमित आकार और रचना के बन्धन में आबद्ध होने के बावजूद आकृति में शारीकि झुकाव के माध्यम से गति और सौन्दर्य की अनुपम प्रतिष्ठा समाहित है। शिव और पार्वती दोनों की नीचे की ओर झुकी हुई आँखों के माध्यम से नवविवाहिता दम्पत्ति के मुख पर सहज अनुराग, संकोच एवं दिव्य भावों के अंकन में शिल्पी को अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। ढाका संग्रहालय में सुरक्षित कल्याणसुन्दर मूर्ति में जटा जूट धारी शिव के दाहिने हाथ में त्रिशूल है तथा पार्श्व में वधू रूप में पार्वती को दर्शाया गया है।[25] विहार शरीफ से मिली उमा-माहेश्वर मूर्ति में शिव और पार्वती की प्रणयी छवि व्याप्त है।[26] आलिंगनबद्ध रूप में शिव का एक हाथ पार्वती का चिबुक स्पर्श कर रहा है और दूसरा देवी के सुवर्तुल पीन पयोधर पर स्थित है। बोस्टन संग्रहालय में संग्रहीत ताम्र निर्मित उमा-माहेश्वर मूर्ति[27] में आकृति की मुद्रा जटिल होने पर भी गति और सौन्दर्य का भाव कुण्ठित नहीं हुआ है। मुद्राओं की भिन्नता से मूर्ति अधिक मोहक, प्रतीत होती है, प्रणय की मुद्रा में शिव और पार्वती दोनों के मदालस चेहरे मादकता से पूर्ण हैं और सम्पूर्ण शिल्प में गति एवं चपलता का ओजस्वी अंकन हुआ है। शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप की एक सुन्दर किन्तु कुछ खण्डित मूर्ति राजशाही संग्रहालय में सुरक्षित है जो पूर्वी वंगाल से प्राप्त हुई थी।[28] लम्बा मुकुट और हार आदि आभूषणों से अलंकृत इस मूर्ति के बाएं भाग में पुष्ट स्तन दिखलाया गया है। मुख मण्डल के आधे बाँए भाग पर नारी सुलभ कोमलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। पुरुषोचित अलंकरणों से युक्त दाहिना भाग स्वाभाविक कड़ापन लिए हुए है। सम्पूर्ण शिल्प में शैव धार्मिक मान्यता की मार्मिक छवि उभरी है। अलंकरण की बहुलता के बाजजूद भावबोध की दृष्टि से आकृति अधिक सम्पन्न है। शिव के लिंग रूप की मूर्तियाँ भी विविध क्षेत्रों से प्राप्त होती हैं। पाल नरेश धर्मपाल के 26वें राज्य काल में बोधगया में चतुर्भुज लिंग की स्थापना की गई थी।[29]

सूर्य मूर्तियों में राजशाही संग्रहालय में सुरक्षित मूर्ति[30] में किरीट मुकुट आदि आभूषणों से अलंकृत सूर्य के दोनों हाथों में सनाल कमल है। सात अश्वों से संचालित रथ पर सवार सूर्य के पार्षदों में दण्डी, पिंगल सारथी अरूण राज्ञी, निक्षुभा और भू-देवी महाश्वेता का प्रदर्शन हुआ है। विविध आलंकारिक अभिप्रायों से सुसज्जित इस मूर्ति में गति स्फूर्ति एवं सौन्दर्य का विशिष्ट भाव है। बंगाल के सान्तल परगना से प्राप्त सूर्य मूर्ति[31] इस कला शैली की एक सुन्दर कृति है। मूर्ति आलंकारिक विशेषताओं के दृष्टिकोण से काफी प्रभावोत्पादक है। साथ ही उसमें आध्यात्मिक सौम्यता और कलात्मक शोभा की मोहक प्रतिष्ठा भी है। दुहरे कमलासन पर खड़े सूर्य के दोनों हाथों में सनाल कमल है। सिर पर मुकुट गले में ग्रैवेयक तथा बाँए कन्धे से नीचे तक लटकता

Scanned with CamScanner

हुआ यज्ञोपवीत का प्रदर्शन हुआ है। पार्षदों में दण्डी, पिंगल, राज्ञी, निक्षुभा, भू-देवी, महाश्वेता, सारथी अरुण और उषा-प्रत्यूषा का अंकन हुआ। इसी प्रकार तियरा (बंगाल) चौड़ा ग्राम से मिली मूर्ति[32] में सात अश्वों से खीचे जाते हुए एक चक्र वाले रथ पर आसीन सूर्य के साथ में अरूण, ऊषा, प्रत्यूषा, पिंगल आदि को प्रदर्शित किया गया है। सभी आकृतियाँ मनोहर हैं और उनमें सौन्दर्य की सुन्दर अभिव्यजंना हुई है।

गणेश की अनेक आकर्षक और भावमयी मूर्तियाँ विविध क्षेत्रों से प्राप्त हुई हैं। पटना संग्रहालय में सुरक्षित नृत्यरत गणेश की छःभुजी मूर्ति में उनकी पीठिका के नीचे वाहन मूषक को उत्कीर्ण किया गया है।[33] दाहिनी तरफ के दो हाथों में परशु तथा पाश है और एक हाथ उदर का स्पर्श कर रहा है। बाए हाँथ में सर्प, पुस्तक और मोदक पात्र है। मुकुट से अलंकृत लम्बोदर रूप में गणेश की पारम्परिक आकृति में सूँड़ आकर्षक ढंग से मोदक पात्र वाले हाथ की तरफ मुड़ा हुआ है। वस्तुतः उनका एक दाहिना हाथ जो उदर को स्पर्श कर रहा है, वह नृत्य मुद्रा में तालात्मक गति में है और शरीर के झुकाव तथा खड़े हुए आन्दोलित पैरों से नृत्य की गति को व्यक्त किया गया है जो अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ा है। इसी प्रकार बंगाल से मिली एक सुन्दर मूर्ति में नृत्य करते हुए अष्टभुजी गणपति को अतिकलात्मक ढंग से प्रदर्शित किया गया है।

पाल-मूर्ति शैली की अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों में कार्तिकेय, सरस्वती, मातृका, महिषासुरमर्दिनी, नाग, गन्धर्व आदि की उत्कृष्ट शिल्प से सम्पन्न भावपूर्ण मूर्तियाँ विहार और बंगाल के विविध क्षत्रों से प्राप्त हुई हैं। नारी रूप में प्रदर्शित देवियों की मूर्तियों में नारी काया का मोहक रूप प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्वतः स्पष्ट है कि पूर्वी भारत की मगध वंश कला शैली में बौद्ध एवं ब्राह्मण दोनों धर्मों से सम्बन्धित मूर्तियों का निर्माण किया गया। वस्तुतः इस कला शैली को धार्मिक अंश ने ओजस्वी स्वर प्रदान किया है। कलाकार की प्रेरणा पारम्परिक विधि एवं नियम से नियन्त्रित होने पर भी सौन्दर्य के प्रति सहज अनुराग से आवेष्टित है जो मानवीय आकृतियों के विविध रूपों, मुद्राओं, कुहनियों एवं घुटनों के कोणात्मक मोड़ अंगों को उचित आकार तथा मुखों को उचित अभिव्यक्ति देने में प्रस्फुटित हैं। साथ ही उनकी आलंकारिक प्रतिभा ने बहुरूपदर्शी नमूनों एवं अभिप्रायों का सृजन किया है। इस कला शैली की छाप को भारत के बाहर दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न देशों की कतिपय मूर्तियों पर भी देखा गया है।[35]

तत्युगीन मूर्तियाँ यद्यपि सौन्दर्य शास्त्र की दृष्टि से सुरूचिपूर्ण नहीं हैं, किन्तु कलाकार ने यदा-कदा ऐसी मनोरम मूर्तियों का सृजन किया है जिसे देखकर आश्चर्य होता है। भौतिकवादिता एवं विलासिता के बाद भी इन मूर्तियों में वह उच्च सौन्दर्यादर्श है जो इसे कला की विकृति से उबार लेता है। बारहवीं शती की मूर्तिकला मुख्यतः राजकीय प्रश्रय में पल्लवित सांस्कृतिक एवं साहित्य का परिणाम है। इस युग की कला एवं साहित्य शारीरिक आकर्षण एवं सांसारिक तन्मयता से ओत-प्रोत हैं। जयदेव के गीत गोविन्द से प्रेरित होकर सेन कलाकारों ने बहुसंख्यक मूर्तियों का निर्माण किया। पालयुगीन आध्यात्मिकता को सेन कलाकारों ने सांसारिकता में परिवर्तित कर दिया जो तन्त्राधृत है। इससे पालयुगीन मूर्तिकला को पूर्वी भारत की सर्वोत्कृष्ट कलाकृति की संज्ञा प्रदान की जा सकती है।

Scanned with CamScanner